P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-7* (Part-2) March- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

भगवद्गीता में चित्रित मूल्यों का व्यक्तित्व–विकास की प्रक्रिया में योगदान

सारांश

श्रीमद्भगवद्गीता केवल धार्मिक ग्रन्थ नहीं अपितु विश्व का प्रथम मनोविज्ञान एवं नीतिशास्त्र है जिसमें मनुष्य के व्यक्तित्व को गढ़ने के महान् सूत्र समाहित हैं। प्रस्तुत लेख में उन्हीं में से कुछ सूत्रों का उल्लेख किया गया है। यथा– क्षमा, आर्जवता, मैत्री एवं करूणा, त्यागपूर्वक उपभोग, दान, अक्रोध, निरहंकारिता, अनिन्दा, मृदुता, निर्भयता, सत्त्वसंशुद्धिः तथा स्वाध्याय आदि।

मुख्य शब्द : अजस्र–लगातार, निःसृत–पैदा होना, शान्ति–क्षमा, आर्जवता–सरलता, अपैशुनम्–निन्दा न करना, मार्दवम्–विनम्रता, सत्त्वसंशुद्धिः–मन की पवित्रता।

सत्यनारायण कुमावत
प्रधानाचार्य
शिक्षा विभाग,
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय,
बोरड़ा बावरियान
शाहपुरा, भीलवाड़ा, राजस्थान, भारत

हरमल रेबारी
सह आचार्य,
संस्कृत–विभागाध्यक्ष
श्री प्रतापसिंह बारहठ राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
शाहपुरा, भीलवाड़ा, राजस्थान, भारत

प्रस्तावना

मूल्य मानव जीवन के वे आधारस्तम्भ हैं जिनसे प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व की गुणात्मकता में प्रभावी विकास की अनन्त सम्भावनाओं को अन्वेषित कर मानव को महामानव होने की यात्रा की ओर अग्रेसित किया जा सकता है। विधाता ने सृष्टि के सृजन के साथ अनेक अजस्र अनुदान मानवीय जगत् को प्रदान किये हैं जिनके द्वारा सत्यं शिवम् और सुन्दरं से युक्त शाश्वत मूल्यों का अविराम प्रवाह अबाध प्रवाहित हो रहा है। इसी श्रृंखला में ऐसी ही एक महान् धारा का उद्गम इसी पवित्र प्रवाह से हुआ है, वह हैं श्रीमद्भगवद्गीता । उक्त महान् ग्रन्थ के मंथन से मानव के व्यक्तित्व को गढ़ने वाले अमृतमय रत्नसम अनेक मूल्य निःसृत हुये हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में विशेषरूप से 12 वें अध्याय के श्लोक क्रमांक 13 से 19 एवं अध्याय 16 के श्लोक 1 से 3 में 59 जीवन मूल्यों का उल्लेख हुआ है। और वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में उपस्थित हुई द्वन्द्वात्मक एवं विध्वंसक परिस्थितियों के दुष्परिणामों से प्रभावित व्यक्ति के व्यक्तित्व को सम्यक् करने का सर्वोत्तम राजमार्ग है भगवद्गीता में उल्लेखित मूल्य। वर्तमान में दृष्टिगोचर होती चुनौतियों पर विजय हेतु श्रीमद्भगवद्गीता में समाहित मूल्यों के योगदान का विवेचन आवश्यक प्रतीत हो रहा है।

उद्देश्य

व्यक्ति के व्यक्तित्व में जब विघटन की प्रक्रिया आरम्भ होती है तो उसका जीवन असन्तुलित होकर अनेक अमानवीय कृत्यों में संलिप्त हो जाता है, परिणामस्वरूप वह इस जगत् में अनेक समस्याओं का हेतु बनकर चतुर्दिक अव्यवस्थाओं का निर्माण करते हुए विध्वंसात्मक परिस्थितियाँ को उत्पन्न करता है। उक्त समस्या का समाधान व्यक्तित्व संघटन की प्रक्रिया को सघन करके ही किया जा सकता है और इसके लिए एक आधारस्तम्भ की आवष्यकता है। श्रीमद्भगवद्गीता में निहित मूल्यों को इसका मूलाधार बनाकर व्यक्तित्व–विकास की प्रक्रिया को सुदृढ़ किया जा सकता है। यह शोध–आलेख इसी उद्देष्य को आधार बनाकर किया गया एक सार्थक प्रयास है।

भगवद्गीता में चित्रित मूल्यों का विवेचन

व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया की आधारभूमि में मूल्यों की भूमिका बीजवपन के समतुल्य है। श्रीमद्भगवद्गीता में चित्रित प्रमुख मूल्यों का विवेचन प्रस्तुत है–

क्षमा या क्षान्ति

संसार में परस्पर होने वाले लौकिक व्यवहार में व्यक्ति द्वारा त्रुटि होना स्वाभाविक है किन्तु उसे भूल सुधार करने का अवसर प्रदान करना यह एक मानवीय मूल्य है। अज्ञानतावश अपराध करने वाले को दण्ड देने की सामर्थ्य रहते हुए भी उसके अपराध को सह लेना और उसको माफ कर देना क्षमा है । गीता के अध्याय 12 के श्लोक 13 तथा अध्याय 16 के श्लोक 3 में कहा गया है– किसी भी व्यक्ति से भूलवश या अज्ञानता से अपराध हो जाने पर उसे क्षमा करो[1]।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि क्षमा माने पराजय नहीं, क्षमा माने दुर्बलता अथवा भोलापन भी नहीं। क्षमा पलायन नहीं, अपितु आक्रमण है। क्षमा एक शस्त्र है। जो उसे तौल सकेगा, प्रयोग कर सकेगा, उसके लिए वह अमोघ शस्त्र है। साम, दाम, दण्ड, भेद से भी क्षमा अधिक प्रभावी होती है अतः वर्तमान में उक्त मूल्य के संवर्धन से परस्पर बदले की भावना से होने वाले जघन्य अपराधों को न्यून किया जा सकता हैं।

आर्जवता या ऋजुता

जीवन में सरलता एवं सीधेपन को आर्जव कहते है। व्यक्ति के जीवन में बिना किसी कुटिलता व कृत्रिमता से रहित सहज, स्वाभाविक और सरल आचरण उसके मन, वाणी तथा कर्म से प्रकट होता हुआ परिलक्षित होता है तब वह एक मूल्य के रूप में आर्जवता या ऋजुता कहलाता है। मद्भगवद् गीता कहती है–साधक के शरीर, वाणी और मन के व्यवहार में कोई बनावटीपन नहीं रहना चाहिये, उसमें स्वाभाविक सीधापन हो[2]। आर्जवता या ऋजुता से रहित मनुष्य के व्यक्तित्व का विघटन होकर न केवल उसका सहज और स्वाभाविक विकास अवरुद्ध होता है बल्कि उसकी अन्तर्निहित शक्तियों का क्षरण होकर उसमें छिपी अनन्त संभावनाए¡ भी दग्धप्रायः हो जाती है। अतः ऋजुता के विकास के लिये छोटे बालक की तल्लीनता चाहिए। जो कहीं न कहीं तल्लीन होता हो, जिसके लिए संसार में कोई न कोई प्रिय विषय हो, कहीं न कहीं रम जाने का जिसको अभ्यास हो, वह मनुष्य अपने आप सरल–स्वभावी बन जाता है। ऋजुता के लिए मनुष्य का मन और शरीर सशक्त होना चाहिए।

मैत्री एवं करूणा

भगवद्गीता कहती है–सबके साथ किये जाने वाले स्वार्थरहित प्रेम को मैत्री एवं हेतुरहित दयालुता को करूणा कहा जाता है[3]। भगवान् प्राणी मात्र के सुहृद् अर्थात् मित्र है[4]। मैत्री एवं करूणा से चित्त निर्मल होता है[5]। व्यक्ति के व्यक्तित्व में मैत्री व करुणा जैसे मूल्यों को विकसित कर परिवार, समाज, मत एवं पंथों में निर्मित होने वाले पारस्परिक विद्वैष को समाप्त किया जा सकता है।

त्यागपूर्वक उपभोग

ईश्वर द्वारा प्रदत्त प्रत्येक वस्तु का त्यागपूर्वक उपभोग करना चाहिए[6]। भगवद्गीता कहती है– सबका पालन करनेवाले भगवान् की असीम कृपा से जीवन–निर्वाह की सामग्री समस्त प्राणियों को समानरूप से प्राप्त है किन्तु जो प्राप्त सामग्री को दूसरों की सेवा में लगाये बिना ही उसको अपनी मानकर स्वयं ही उसका उपभोग करता है, वह मनुष्य चोर है[7]। उक्त मूल्य के पोषण से समाज में भ्रष्टाचार एवं शोषणमुक्त वातावरण की निर्मित सहज एवं स्वाभाविक रूप से की जा सकती है।

दान

भगवद्गीता कहती है–मनुष्य के पास वस्तु, सामर्थ्य, योग्यता आदि जो कुछ भी है, वह सब भगवान् ने दूसरों की सेवा करने के लिये उसे निमित्त बनाकर दी है। अतः भगवत्प्रीत्यर्थ आवश्यकतानुसार जिस किसी को जो कुछ दिया जाय, वह सब उसी का समझकर उसे देना 'दान' है[8]। दूसरों को देने की वृत्ति मानवता का लक्षण है। अन्य प्राणियों में यह वृत्ति नहीं है। मनुष्य के अन्तःकरण में सहानुभूति होती है। उसी के परिणामस्वरूप वह दूसरों की सहायता करता है। 'मैं ही कमाता हूँ और मैं ही खाता हूँ' यह पशुवृत्ति है तथा 'मैं कमाता हूँ और मुक्तहस्त से देता हूँ' यह वस्तुतः आदर्ष मानव की वृत्ति है। 'शत –हस्त समाहार, सहस्र हस्त विकर' यह वृत्ति घर घर और व्यक्ति व्यक्ति में निर्मित होनी चाहिए।

अक्रोध

गीता कहती है–दूसरों का अनिष्ट करने के लिये अन्तःकरण में जलनात्मक वृत्ति का अभाव ही अक्रोध है[9]। किसी को हमारी ओर से शारीरिक अथवा मानसिक क्लेश न पहुंचे इस प्रकार मन की सहज प्रवृत्ति होकर अन्तःकरण की विशाल, व्यापक प्रेममय स्थिति हो जाना ही अक्रोध है[10]।

व्यक्ति को यदि सर्वविध उन्नति करनी हो तो उसे क्रोध का त्याग करना ही चाहिए। व्यक्तिगत, पारिवारिक अथवा सामाजिक जीवन के सभी व्यापार प्रेममय, स्नेहासिक्त, सौजन्यपूर्ण ढंग से करके ही अक्रोध का वातावरण निर्मित किया जा सकता है।

निरहंकारिता

गीता कहती है–शरीर, इन्द्रियों, मन व बुद्धि के प्रति मैं–पन के भाव का अभाव ही निरहंकारिता है[11]। व्यक्ति के व्यक्तित्व में क्षरण का सबसे बड़ा कारण है उसका यह अहंकारयुक्त चिन्तन कि मैं कोई बड़ा हूँ, मैं आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, बौद्धिक, धार्मिक, आध्यात्मिक अथवा विद्या–कला आदि किसी क्षेत्र में अधिकार पुरुष हूँ , सबको मेरी सुननी चाहिए, मेरा सम्मान करना चाहिए[12]।

अपैषुनम् या अनिन्दा

परदोष दृष्टि के अभाव में ही अनिन्दा रूपी मूल्य का प्रकटीकरण होता है। अहंकार, दांभिकता, निराशा तथा ईर्ष्या ही निन्दा को जन्म देते है और इनका अभाव अनिन्दा को। भगवद्गीता के अध्याय 16 के श्लोक 2 में कहा गया है कि 'चुगली न करना दैवी सम्पदा को प्राप्त हुए मनुष्य का लक्षण है[13]। ''निन्दा–प्रवृत्ति ऊपर से नगण्य दिखाई देती होगी, किन्तु वह अतिघातक है। उसके कारण व्यक्ति और समाज के मन को कीड़ा लग जाता है,वह घुन जाता है। व्यक्ति और समाज कर्तृत्वहीन बन जाता है। निन्दा के कारण समय का अपव्यय होता है। हमारी शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों का दुरुपयोग ही नहीं होता, वरन् हम अनेकों के जीवन अकारण उद्ध्वस्त कर देते हैं।[14]

मार्दवम् अर्थात् विनम्रता व मृदुता

भगवद्गीता के अध्याय 16 के श्लोक 2 में कहा गया है कि–मार्दवम् अर्थात् अन्तःकरण की कोमलता दैवी सम्पदा को प्राप्त मनुष्य का लक्षण है[15]। ''जिसके अन्तःकरण में भूतमात्र के प्रति भगवद्भाव जाग्रत रहता है, उसका व्यवहार भी नम्र एवं मृदु रहता है। वह सतत चिन्ता करता है कि अपने द्वारा किसी को दुःख न हो[16]।'' सच्ची मृदुता केवल जिह्वा की नहीं, अपितु कृति और उसके पीछे निहित अन्तःकरण की होती है। मृदुभाषण से ऐहिक उन्नति की दृष्टि से भी हमें विपुल लाभ होगा।

किसी का अन्तःकरण न दुःखाने के हमारे स्वभाव के कारण हमारे शत्रु कम होंगे और मित्र बढ़ेंगें[17]।

अभयम् (निर्भयता)

अभयम् अर्थात् भय का सर्वथा अभाव[18]। व्यक्ति हो अथवा समाज, और उसे ऐहिक उन्नति करनी हो अथवा पारलौकिक, उसमें निर्भयता रहना अत्यावश्यक है। इसीलिए श्रीमद्भगवद्गीता के 16वें अध्याय में दैवी सम्पदा का विवेचन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने जो प्रथम गुण बताया है, वह है–'अभयम्'।

भय के अनेक कारण हैं यथा–अज्ञान, पाप, असत्य, ध्येयहीनता, देह व मन की रुग्णता, मृत्यु आदि। भय की जड़ें इतनी गहरी जमी होती हैं कि इन सब जड़ों–सहित भय को उखाड़े बिना व्यक्ति अथवा समाज की प्रगति असम्भव है।

सत्त्वसंशुद्धि

अर्थात् अन्तःकरण की पवित्रता[19]। कहा जाता है कि अन्तःकरण विशेष सत्त्वगुण से बना है। अतएव उसे सत्त्व भी कहते हैं। इस प्रकार 'सत्त्वसंशुद्धिः' का अर्थ हुआ अन्तःकरण की भलीभांति शुद्धि। यह दैवी सम्पदा का दूसरा लक्षण है। मन का साफ होना जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि है। जिसका मन साफ नहीं है, वह सभी लोकों का सारा भोग पाकर भी सुखी नहीं होता और जिसका मन साफ है, उसके दिव्य सुख के सामने अनन्त ब्रह्माण्ड के सुख तुच्छ हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि सुख का मूल मन की पवित्रता है।

स्वाध्याय

अर्थात् स्व का अध्ययन एवं सद्ग्रन्थों का पठन–पाठन[20]। ज्ञान की उपासना करने की सर्वोत्कृष्ट विधि स्वाध्याय है। स्वाध्याय मनुष्य को अन्तर्मुख बनाता है। बाहर जितनी सृष्टि है उससे अनन्तगुनी सृष्टि व्यक्ति के अन्दर समाहित है अतः स्वाध्याय से उसके लिए उस अद्भुत अन्तः सृष्टि का मार्ग खुल जाता है। मनन, चिन्तन व स्वाध्याय करने से सरल शब्दों के भी अनन्त अज्ञात अर्थ अवगत होते हैं। उचित रीति से स्वाध्याय पूर्ण हो सके इसके लिए निरलसवृत्ति, स्थाणुविजय, विजिगीशु वृत्ति, एकाग्रता, जिज्ञासुवृत्ति, एकान्तवास एवं शिष्यत्व की भावना का होना अत्यावश्यक है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि इस समग्र सृष्टि में अनन्त मूल्यों का एक शाश्वत एवं चिरंतन प्रवाह अबाध प्रवाहित हो रहा है। सभी मूल्यों की खोजकर उनको स्थापित करने के लिए उनको अंगीकार करना मानवता के लिए अत्यावश्यक हो गया है। यह कार्य एक व्यक्ति द्वारा संभव नहीं है इसके लिए सभी व्यक्तियों, मत–पंथों एवं धर्मों में समन्वय स्थापित करते हुए एक विराट शृंखला का निर्माण कर व्यक्तित्व–विकास की प्रक्रिया को युगानुकूल विकसित करना होगा तभी खुदा द्वारा निर्मित यह दुनिया और सुन्दर बन सकती है।

अंत टिप्पणी

1. *भगवद्गीता 12..13,16.3*
2. *गीता,साधक संजीवनी 16.1.918*
3. *भगवद्गीता 12.13*
4. *सुहृदः देहिनाम् (गीता 5.29)*
5. *मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां.....(पातजञ्जलयोगसूत्र 1.33)*
6. *'तेन त्यक्तेन भुंजीथा'' यजुर्वेद 40.1*
7. *गीता,साधक संजीवनी 3.12*
8. *गीता,साधक संजीवनी 16.1.917*
9. *गीता,साधक संजीवनी 16.2.920*
10. *जीवन मूल्य भाग–2 पृ. 104*
11. *गीता,साधक संजीवनी 2.71.129*
12. *जीवन मूल्य भाग–2 पृ. 111*
13. *भगवद्गीता 16.2*
14. *जीवन मूल्य भाग–1 पृ. 100–101*
15. *भगवद्गीता 16.2*
16. *जीवन मूल्य भाग–2 पृ. 46*
17. *जीवन मूल्य भाग–2 पृ. 50*
18. *भगवद्गीता 16.1*
19. *भगवद्गीता 16.1*
20. *भगवद्गीता 16.1*